

ष

षड्-दर्शन-1

(Six Philosophies-1)

पश्चिम में दर्शन के लिए फ़िलॉसफ़ी शब्द का प्रयोग होता है। यह दो यूनानी शब्दों फ़िलास और सोफ़िया से मिल कर बना है। फ़िलास का अर्थ है अनुराग और सोफ़िया का मतलब है प्रज्ञा। फ़िलॉसफ़ी का अर्थ हुआ ज्ञान के प्रति अनुराग। लेकिन ज्ञान के प्रति प्रेम महज़ एक बौद्धिक विलास भी हो सकता है जिसका जीवन के साथ कोई सीधा या परोक्ष संबंध न हो। भारत में दर्शन की मूल धारणा इससे भिन्न है। यहाँ दर्शन का अर्थ है देखना : अपने भीतर और अपने बाहर 'ध्यान' से देखना एवं इस प्रक्रिया में सृष्टि का सत्व आत्मसात् कर लेना। मनीषी हमारे यहाँ 'द्रष्टा' कहे गये हैं, विचारक नहीं। संवेग, भाव और विचार को तो सम्यक दृष्टि की बाधा बताया गया है। ये सम्यक विकास की मध्यावधि अवस्थाएँ हैं : एक तरह की पूँछ जो धीरे-धीरे झड़ जानी है। संवेगों-भावों-विचारों में डुबकी लगा कर धीरे-धीरे उनके पार हो जाना-यही द्रष्टा की निशानी मानी गयी है। संवेग, भाव और विचार तो तीन लहरें हैं। और जब तक लहरें उठती रहती हैं, पानी दर्पण नहीं होता। सृष्टि का वैभव या उसकी बिडम्बना उस तरह आत्मसात् या प्रतिच्छायित नहीं कर पाता जो सत् + चित् + आनंद की परम अवस्था की खातिर ज़रूरी है।

भारतीय दर्शन मूलतः यही कहता है। मुख्यतः इसकी नौ आधारपीठ हैं। इनमें छह आस्तिक हैं यानी वेदों को आधार-ग्रंथ मानने वाले : मीमांसा, वेदांत, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक। तीन नास्तिक हैं यानी वेदों से मार्गदर्शन लेने का विरोध करने वाले। ये हैं बौद्ध, जैन और लोकायत। इस प्रविष्टि में पहले थोड़ा-सा विचार वेदों पर किया जाएगा

क्योंकि भारतीय दर्शन पश्चिम की तरह ईश्वर के विरोध और समर्थन में न बँटा हो कर, वेदों के पक्ष और विपक्ष में विभाजित है।

वेद और उनसे जुड़े विवाद : 'विद्' धातु से वेद की उपज है। 'वेद' शब्द का अर्थ है ज्ञान। यह ज्ञान भी 'दृष्टि' पर आधारित है। इसीलिए वैदिक ऋचाओं के गायक 'मंत्रद्रष्टा' कहे गये हैं। ऐसा माना जाता है कि गहन ध्यान में बीजाक्षर कौंधे, ऋचाएँ उतरतीं। वैदिक ऋषि स्वयं को 'माध्यम' मानते थे और वेदों को अपौरुषेय-अपुरुष अर्थात् परमचेतना (या अवचेतन) का पुरस्कार। मंत्रों और ऋचाओं का ऐसा गहन छंद-वैभव और बिम्ब-वैभव था कि कई पीढ़ियों तक ये जिह्वाग्र पर ही रहीं, यानी श्रुति-परम्परा का हिस्सा बनी रहीं। भोजपत्रों और ताम्रपत्रों पर इन्हें उतारने की सुध ऋषियों को कई सौ बरस बाद आयी। शायद इसी कारण वेदों के संबंध में तिथि-निर्णय पर लोग एकमत नहीं हैं। ढाई हजार वर्षों का वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। ज़्यादातर विद्वान् इन्हें 1300 से 1000 ईस्वी के बीच लिखित या अवतरित मानते हैं। इनमें ऋग्वेद सबसे पुराना माना जाता है और अथर्ववेद सबसे नया।

चूँकि वेद 'गुह्य' माने गये और ज्ञान की पात्रता / अपात्रता के निर्णय का द्वंद्व इनसे जुड़ा रहा, इसलिए एक निश्चित कालखण्ड तक ये कंजूस का धन ही बने रहे। अंत्यजों की पहुँच से तो इन्हें दूर रखा ही गया, स्त्रियों भी वेद-पाठ से वंचित रखी गयीं। हालाँकि घोर बिडम्बना यह है कि वेदों की कई मंत्रद्रष्टा स्त्रियाँ (ऋषिकाएँ) हैं। वाक्, उषा, रात्रि, औषधि, पृथ्वी, नदी आदि कई आराध्य छवियाँ भी स्त्रियाँ ही हैं। वैदिक युग की कई स्त्रियाँ, जो ब्रह्मवादिनियाँ कहलाती थीं, शास्त्रार्थ करती जंगल-जंगल घूमती भी दिखाई गयी हैं। फिर भी स्त्रियों का वेद-पाठ निषिद्ध रहा।

इस तरह के कई भयंकर विवाद वेदों के आस-पास घुमड़ते रहे हैं : जैसे जाति-जड़ता का प्रश्न, गोमांस भक्षण का प्रश्न। दक्षिणपंथी दलों ने 'वैदिक वैभव' नाम की एक लाठी भी बनायी है जिससे वे अन्य नस्लों की धुनाई करते हुए, उन्हें 'बर्बर' सिद्ध करते हुए अपने अतीत-गौरव के गायन में मगन रहते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि वेदों के रचयिता आर्य थे, यानी ईरान की तरफ से आये थे। विदेशी विशेषज्ञ और भाष्यकार कहते हैं कि वेदों में 'जाति' शब्द का प्रयोग अलग अर्थों में हुआ है : 'ब्राह्मण' का बेटा 'लुहार' और 'लुहार' का बेटा क्षत्रिय या वैश्य अपने पेशे और अपनी मनोवृत्ति के हिसाब से होता था। 'जन्म' के अंधे संयोगों की गिनती नहीं थी। इसी तरह 'गो' शब्द का अर्थ भी 'इंद्रियाँ' हैं जिनके आधार पर गोचर, गोमांस आदि की व्याख्या हुई है।

वेदों में खास तरह का काव्यात्मक और सांगीतिक वैभव है। ऋग्वेद के जो दस हजार छंद उपलब्ध हैं, वे प्रकृति के अवयवों को ही देवता मानते हुए एक सुन्दर दृष्टांत-काव्य की रचना करते हैं। इसके सूक्तों में 33 मुख्य देवों का वैभव-गायन है। यजुर्वेद में प्रार्थना सूत्र हैं। सामवेद में विलक्षण गीतात्मकता है। अथर्ववेद में जड़ी-बूटियों के जादुई विनियोग की बात करते हुए बताया गया है कि सारी सृष्टि चेतन है, 'सोम' और 'अग्नि' के अलग-अलग अनुपात से निर्मित एक महान यज्ञशाला है जिसमें समिधा वृत्तियों पर भी चढ़ानी है। दरअसल, वेद गुह्य और पोशीदा कृतियाँ थीं : ऊपर से सरल और गीतिकाव्यात्मक भावोद्गार जान पड़ती थीं। असल में यह दृष्टांत काव्य विगूढ़ है। प्रतीकों का गहन संजाल है जिसमें कई-कई अर्थ एक-एक अक्षर के इर्द-गिर्द बसे हैं।

बाद का वैदिक साहित्य 'कर्मकाण्ड' नामक प्रयोगशाला के माध्यम से मंत्र डीकोड करने के लिए गढ़ा गया। यह संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रंथों, आरण्यकों और उपदेशों का बृहद और जटिल तंत्र है जिसे हम संक्षेप में इस प्रकार तालिकाबद्ध कर सकते हैं :

संहिता	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद्
ऋग्वेद	ऐतरेय	ऐतरेय	ऐतरेय
	कौषीतकी	कौषीतकी	कौषीतकी
सामवेद	पंचविंश	जैमिनीय	छांदोग्यउपनिषद्
	सदाविंश		केन
	जैमिनीय		
शुभ्र यजुर्वेद	शतपथ	बृहद्रायण	ईष
कृष्ण यजुर्वेद	तैत्तरीय	तैत्तरीय	तैत्तरीय
			कठापनिषद्
			मैत्री
			श्वेताश्वतर

अथर्ववेद

गोपथ

प्रश्नोपनिषद्

मुण्डकोपनिषद्

माण्डूक्योपनिषद्

मीमांसा : मीमांसा शब्द का अर्थ गहन विचार, परीक्षण या अनुसंधान। ईसा पूर्व 200 से 200 ईस्वी के बीच इन मीमांसा के ढाई हजार सूत्रों का सम्पादन मीमांसकों की ऋषि-परम्परा ने किया था। इनमें सृष्टि के कार्य-कारण संबंध पर बल दिया गया है। सृष्टि को यदि एक मशीन माना जाए तो कोई इस मशीन का नियोजक और संचालक भी होगा। इतनी क्लिष्ट और तारतम्यपरक मशीन किसी तीक्ष्ण मनीषा या सर्जनात्मक शक्ति के बिना कैसे चलती है? कम-से-कम एक सर्जनात्मक सिद्धांत तो कहीं है ही। मीमांसक मानते हैं कि वही सिद्धांत ईश्वर है। यह दर्शन दो भागों में बँटा हुआ है। पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा या ब्रह्म-मीमांसा। पूर्व-मीमांसा का प्रथम सूत्र है : अथातो धर्मजिज्ञासा, अर्थात् अब इसलिए धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए। इसी तरह उत्तर-मीमांसा का प्रथम सूत्र है : अथातो ब्रह्मजिज्ञासा अर्थात् अब इसलिए ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिए। पूर्व-मीमांसा के ग्रंथकार जैमिनि ऋषि हैं। इसमें मुख्यतः वेद की कर्मकाण्डपरक मंत्रों की सही व्याख्या है। यह वेद के मूल पाठों के संदिग्ध अंशों का निर्णय भी करता है। उत्तर-मीमांसा के ग्रंथकार बादरायण हैं। मीमांसा की यह शाखा मुख्यतः ब्रह्म अर्थात् परमात्मा की स्थिति के बारे में विचार करती है। पूर्व-मीमांसा को केवल मीमांसा और उत्तर-मीमांसा को वेदांत के नाम से भी जाना जाता है। जैमिनि के सूत्रों का भाष्य शबरस्वामी, कुमारिल भट्ट और पार्थसारथी मिश्र (चौहदवीं सदी तक) करते रहे। वेदों के सूत्र समझाने के क्रम में भाषा की प्रकृति और उसकी संरचना समझाने का महान् कार्य भी मीमांसाकारों ने किया।

वेदांत / उपनिषद् : वेद का अंतिम भाग ही वेदांत कहलाता है और इसी को उपनिषद् की संज्ञा भी दी जाती है। वेद मुख्यतः दो भागों में विभक्त है : मंत्र और ब्राह्मण। किसी देवता को सम्बोधित करने वाला वैदिक सूक्त या किसी देवता के प्रार्थनापरक अर्थस्मारक वाक्य को मंत्र कहा जाता है। ब्राह्मणभाग वेद के मंत्रभाग से एकदम पृथक् है। दार्शनिक विचारों और तथा तार्किक विचारों का उत्कर्ष वेदांत में ही उपलब्ध है। इसे वेदांत इसीलिए कहा जाता है कि यह वेद के अंतिम ध्येय और कार्यक्षेत्र की शिक्षा देता है और इसलिए कि यह उन उपनिषदों पर आधारित है, वेद का अंतिम भाग हैं। दर्शन की इस पद्धति को उत्तर-मीमांसा भी कहा गया है। जैमिनि की पूर्व-मीमांसा का यही उत्तरार्द्ध है, लेकिन व्यवहार में यह एक स्वतंत्र शास्त्र की हैसियत प्राप्त कर चुका है। वेदांत के अनुसार समस्त विश्व एक ही अनादि शक्ति अर्थात्

ब्रह्म या ईश्वर का संश्लिष्ट रूप है।

गुरु के चरणों में बैठकर प्रश्न उठाना और गुरु से उत्तर पाना : यह है उपनिषदों की संरचना का उत्स। ईसा पूर्व 600 तक सब प्रमुख उपनिषद् प्रकाश में आ चुके थे। अट्टारहवीं सदी तक उपनिषद् दाराशिकोह के फ़ारसी अनुवादों के माध्यम से पुनः युरोप पहुँचे और शोपेनहॉवर, कारलाइल, इमर्सन और येट्स की चिंतन-धारा पर इनका गहरा असर रहा। वेदों में कविता का लालित्य था, पर उपनिषद् बौद्धिक विमर्शात्मक गद्य का विलक्षण उदाहरण हैं। ब्रह्मज्ञान के इर्द-गिर्द बुने गये ये 108 विमर्श एक गङ्गिन समुच्चय हैं : कुछ प्रार्थनाएँ, कुछ टिप्पणियाँ, कुछ संवाद और थोड़ी कथाएँ इस तरह गूँथी गयी हैं कि लगातार इस बात पर बलाघात होता रहता है कि अनेक नामरूप ईश्वर दरअसल एक ही निर्विकल्प सर्जक शक्ति (ब्रह्म) है। वही स्वयंभू व शाश्वत है : सर्वज्ञाता, सर्वअज्ञाता, सर्वशक्तिमान। जब हम देखते हैं, वह हमारी आँख बन जाता है। जब हम साँस लेते हैं, हमारी साँस और जब हम सोचते हैं तो हमारा मन-मानस / मनीषा भी वही होता है।

चिंतन-मनन और सर्वकल्याणकारी निष्काम जीवनचर्या के अनन्तर जब हमारा मन सुशांत होकर उस प्रकाश बिंदु में लीन हो जाता है तो जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि बंधनों से हमारी मुक्ति सम्भव हो जाती है। यही अवस्था मोक्ष की अवस्था है। जन्म-मरण के बीच अनन्त भटकने हैं। मस्तिष्क में भटकनों की अलग अवस्थाएँ अलग-अलग कर्मों के रूप में प्रतीकित हैं। एक व्याख्या तो यह बनती है कि कर्मों के अनुसार चित्त की जो स्थिति होती है, वही स्वर्ग या नरक है। बाकी जो वस्तुवादी नरक-स्वर्गादि चित्रित हैं, बुद्ध ने आगे चल कर उसका खण्डन कर दिया। हम चाहें तो उन्हें काव्यात्मक रूपक समझ सकते हैं।

देखें : आर्यभट्ट और *आर्यभटीय*, उपनिषद्, कपिल, *अर्थशास्त्र* और कौटिल्य, गोपीनाथ कविराज, गोविंद चंद्र पाण्डे, चैतन्य महाप्रभु, जैन दर्शन, न्याय दर्शन, दया कृष्ण, नागार्जुन, पतंजलि और *योगसूत्र*, पाणिनि और *अष्टाध्यायी*, पुराण, पूर्व-मीमांसा दर्शन, बदरी नाथ शुक्ल, बादरायण, बौद्ध दर्शन, *भगवद्गीता*, भरत और *नाट्यशास्त्र*, मुकुंद लाठ, *भागवत पुराण*, *महाभारत*, यशदेव शल्य, योग दर्शन, रामानुजाचार्य, रामअवतार शर्मा, लोकायत, वात्स्यायन और *कामसूत्र*, वेदांत दर्शन, वैशेषिक दर्शन, शंकराचार्य, संस्कृत काव्यशास्त्र, स्मृति-साहित्य, सांख्य दर्शन-1 और 2, सिद्ध-नाथ परम्परा।

संदर्भ

1. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (2012), *भारतीय दर्शन (2)*, अनु. नंद किशोर गोभिल, राजपाल एंड संज, नयी दिल्ली.
2. चंद्रधर शर्मा (1991), *भारतीय दर्शन : आलोचना और अनुशीलन*, मोतीलाल बनारसी दास, नयी दिल्ली.

— अनामिका

षड्-दर्शन-2

(Six Philosophies-2)

पिछली प्रविष्टि में वेदों, वेदांत / उपनिषद् और मीमांसा के बारे में संक्षिप्त चर्चा की गयी है। इसे आगे बढ़ाने से पहले पश्चिम की फ़िलॉसफ़ी और भारतीय दर्शन के एक मुख्य अंतर का उल्लेख आवश्यक है। भारतीय दर्शन दुःख की आधारशिला पर प्रतिष्ठित माना जाता है। प्रायः सभी भारतीय दर्शन दुःख-निवृत्ति के उपायों में ही लगे हुए हैं। भारतीय दर्शन सांसारिक दुखों को बंधन के रूप में और उनके निवारण को अपनी भाषा में मोक्ष के रूप में व्यक्त करता है। आत्यंतिक दुःख-नाश और आत्यंतिक-सुख, दोनों का सम्मिलित नाम ही मोक्ष बताया गया है। पश्चिमी दर्शन में मोक्ष की संकल्पना नहीं है। मोक्ष के लिए श्रुतियाँ तो उपाय बताती ही हैं, कई दर्शनों में इस बारे में तार्किक दृष्टि से विचार किया गया है। वेदों का मार्गदर्शक न मानने वाले दर्शन भी मोक्ष में आस्था रखते हैं। मसलन, चार्वाक स्वतंत्रता या देह-नाश को ही मोक्ष कहते हैं। शून्यवादी आत्मा का उच्छेद होना मोक्ष मानते हैं। बौद्धों का कथन है कि निर्मल ज्ञान की प्राप्ति ही मोक्ष है। जैन दार्शनिक कर्म से उत्पन्न देह में आवरण न होने की दशा में निरंतर ऊपर उठते जाना मोक्ष है। द्वैत-वेदांत में दुःख से भिन्न पूर्ण सुख की प्राप्ति ही मोक्ष है।

इस प्रविष्टि में सांख्य, योग, वैशेषिक और न्याय दर्शनों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गयी है।

सांख्य : ईसा से 600 वर्ष पूर्व कपिल ऋषि द्वारा प्रवर्तित सांख्य-दर्शन का मूल शब्द है 'संख्या'। यह दर्शन प्रकृति को चौबीस तत्त्वों के अलग-अलग अनुपातों का समुच्चय मानता है। सांख्य से संबंधित कपिल की दो रचनाओं का पता चलता है : तत्त्वसमाज और सांख्यसूत्र। तत्त्वसमाज में 22 छोटे-छोटे सूत्रों का संकलन है। सांख्यसूत्र में छह अध्याय हैं। कुल मिला कर 537 सूत्रों वाले इस ग्रंथ के पहले अध्याय में सांख्य विषय का प्रतिपादन है।

कपिल के अनुसार प्रकृति और पुरुष एक-दूसरे के विलोम और एक-दूसरे के सहायक भी (पुरुष का अर्थ यहाँ जगत-व्याप्त चेतना) हैं। प्रकृति और पुरुष मिल-जुल कर सृष्टि की रचना करते हैं। फिर एक खेल करते हैं जिसके तहत प्रकृति प्राणियों को स्वयं में लिप्त और पुरुष से वियुक्त कर देती है। यानी पदार्थमय संसार में लिप्त और चेतना से वियुक्त। फिर दोनों इंतज़ार करते हैं कि कब प्राणी पदार्थमय संसार से थके। जैसे ही वह पदार्थमय संसार और स्वयं अपने फैलाए अहं के जंजाल से थकता है, 'चेतना' की लौ उसमें सुलगती है। जैसे ही यह होता है, प्रकृति भी अपनी लीला का

रुख मोड़कर उसे वापस 'चेतन' तक पहुँचाने का हर उपक्रम करती है। पहले बुद्धि जगती है, फिर अहं टूटता है और अंत में आती है कैवल्य की अवस्था जब सब बंधन कट जाते हैं और एकांत भी सर्वसमावेशी चेतनता से परिपूर्ण हो जाता है।

सांख्य दर्शन के मुताबिक प्रकृति शतरूपा है: तमस्, रजस् और सत् वृत्तियों का समुच्चय। एक दीप के उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। दीप में तेल तामसी वृत्तियों वाला यानी लसलसे स्नेह से या मोह से युक्त 'कारक' है। उदग्र बाती राजसी वृत्तियों वाला 'कारक' और ऊर्ध्वबाहु 'लौ' सात्विक वृत्तियों का रूपायन है। मुनष्य में तीनों हैं। 'लौ' का 'कारक' ही है 'रजस्', किंतु 'चित्त' के विकास की अन्तिम अवस्था ऊर्ध्वमुखी लौ हो जाना है। तामसी वृत्ति के लोगों में अहंकार, मद और रौद्र भाव प्रमुख होता है। राक्षसों की प्रवृत्ति तामसी कही गयी है। त्याग और लोकमंगल वाली वृत्ति देवताओं की मानी गयी है और उन्हें 'सात्विक' कहा गया। राज-पाठ के वैभव से परिपूर्ण रहने की राजसी-वृत्ति राक्षसों में भी पायी गयी और देवों में भी। स्वत्व-बोध (प्रेम का हो या राज्य का) और कर्ता-भाव (मैं सब ठीक कर लूँगा वाला संलक्षण) राजसी-वृत्ति में शामिल है। यह मध्यवर्ती वृत्ति है और लोकमंगल की भावना इसे अलग दीप्ति देती है। पर कैवल्य प्राप्त लोगों (जैसे, चाणक्य) और दृष्टिसम्पन्न लोगों के आशीष के बिना राजसी वृत्ति अराजक भी हो जाती है।

योग : यह दर्शन केवल सैद्धांतिक न हो कर व्यावहारिक भी है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा इसका साहित्य अल्पमात्रा में ही मिलता है। इसके केंद्र में स्वस्थ शरीर और सबल आत्मा हैं। अन्य दर्शनों की तरह योग में शरीर केवल देह-भर न हो कर आत्मरूप है। इसकी मान्यता है कि शरीर स्वस्थ होगा तो चित्त निर्मल रहेगा और इसी निर्मलता से आत्मलाभ सम्भव है। पतंजलि का योगसूत्र इस दर्शन का प्रमुख ग्रंथ माना जाता है जिसमें चार पाद हैं। पहला समाधिपाद है। समाधि के दो भेद बताये गये हैं : सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। यानी निर्विकल्प और सविकल्प। दूसरा साधनपाद है जिसमें योग के बहिरंगों का वर्णन है जिसमें क्रिया-योग, क्लेश और क्लेश-मुक्ति के साधनों का विवरण मिलता है। तीसरा विभूतिपाद है जिसमें योग के अंतरंगों का या योग-शक्ति से मिलने वाली विभूतियों और ऐश्वर्यों का वर्णन है। चौथा और अंतिम कैवल्यपाद है जिसमें समाधिस्थ कैवल्य आदि का वर्णन है।

पतंजलि ने योग को चित्त-वृत्ति का निरोध माना है जो समाधि में ही सम्भव है। इसीलिए योग को समाधि भी कहा गया है। योग दर्शन के अनुसार चित्त की पाँच अवस्थाएँ या भूमियाँ होती हैं : क्षिप्तावस्था, गूढावस्था, विक्षिप्तावस्था, एकाग्रावस्था और निरुद्धावस्था। वृत्तियों के योग-दर्शन में दो

स्वरूप बताये गये हैं : क्लिष्ट और अक्लिष्ट यानी दुखदायी और दुखरहित। वृत्तियों के प्रकार पाँच हैं : प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

सांख्य और योग दर्शन मानते हैं कि चित्त संस्कारों की कार्रवाई से पटा हुआ स्वच्छ जलाशय है। कार्रवाई हटे तो यह जलाशय आईना बन जाए। एक ऐसा आईना जो आत्म और परमात्म दोनों का परावर्तन करे। लेकिन कार्रवाई स्वयं तो हटती नहीं। उसके लिए आयास करना होगा। यही आयास योग है। सांख्य द्वारा निर्धारित तत्त्वों से क्रमिक मुक्ति वेदांत के 'ब्रह्म' की तरह है। यहाँ परमात्मा सच्चिदानंद स्वरूप भावसमाधि न होकर शून्यता का ज्ञान है।

न्याय-वैशेषिक : अन्य भारतीय दर्शन जहाँ कल्पनापरक हैं, वहीं न्याय-वैशेषिक शुद्ध विश्लेषणात्मक, तर्कपरक और काफ़ी हद तक वस्तुनिष्ठ है। बाह्य-यथार्थ को आंतरिक चिंतन के साथ एकरूप करके ही यह दर्शन किसी सार का प्रतिपादन करता है। न्याय का कोशगत अर्थ है उचित-अनुचित का विवेक, लेकिन दर्शन के लिहाज से इसका मतलब है किसी प्रतिपाद्य विषय की अर्थसिद्धि करना। इसके लिए यह दर्शन पाँच चरणों (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन और निगमन) का इस्तेमाल करके सत्य तक पहुँचने की तर्क पद्धति विकसित करता है। न्याय-शास्त्र के दो भेद हैं : प्राचीन न्याय और नव्य न्याय। पहला प्रमेय प्रधान है, दूसरा प्रमाणप्रधान। पहले की भाषा सरल और सुबोध है। दूसरे की दुर्बोध।

न्याय-दर्शन का इतिहास कई सदियों में फैला हुआ है। इसके प्रथम प्रतिपादक गौतम ऋषि माने जाते हैं। ईसा पूर्व तीसरी सदी में रचे गये उनके ग्रंथ *न्यायसूत्र* में उद्देश्य, लक्षण और परीक्षण विधि का अनुसरण किया गया है। यह रचना वैदिक विचारधारा के निष्कर्षों को तर्कसम्मत आधार पर धार्मिक और दार्शनिक मतों के साथ जोड़ती है। न्यायसूत्रों के परिणामस्वरूप बारहवीं सदी में नव्य न्याय का दर्शन फूटा। नव्य न्याय का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ गंगेश का *तत्त्वचिंतामणि* माना जाता है।

न्याय के साथ वैशेषिक-दर्शन भी जोड़ा जाता है जिसके प्रतिपादन का श्रेय कणाद ऋषि को जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार सांख्य और वेदांत से विशिष्ट होने के कारण इसका नाम वैशेषिक पड़ गया। इसमें पदार्थों की विशिष्टता दिखाने वाला जैसा सूक्ष्म विश्लेषण है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। इसीलिए इसका नाम वैशेषिक पड़ गया। सांख्य दर्शन अगर प्रकृति और पुरुष के दो तत्त्वों में सभी तत्त्वों का सन्निवेश करता है तो वैशेषिक-दर्शन इससे भिन्न एक विशिष्ट सत्ता को स्वीकार करता है। समझा जाता है कि गौतम द्वारा प्रतिपादित न्याय-दर्शन के सोलह पदार्थों में धर्म और धर्मी का स्पष्ट विवेचन नहीं था। पर वैशेषिक-दर्शन में इन

दोनों का साधर्म्य और वैधर्म्य दिखाते हुए विवेचन किया गया है। न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार प्रकृति के पदार्थों की छह अवस्थाएँ हैं : द्रव्य (पंच तत्त्व, काल, स्थान, आत्मन्, और मानस), गुण (रंग-स्वाद-गंध, स्पर्श-तापक्रम, संख्या, विस्तार, सम्पर्क, पार्थक्य, प्राथमिकता, संतति, ज्ञान, आह्लाद, पीड़ा, कामना, घृणा तथा इच्छा), कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। इसके अनुसार ज्ञान के चार स्रोत हैं जिसकी तह तक न्याय पहुँचता है : प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

देखें : आर्यभट्ट और *आर्यभटीय*, उपनिषद्, कपिल, *अर्थशास्त्र* और कौटिल्य, गोपीनाथ कविराज, गोविंद चंद्र पाण्डे, चैतन्य महाप्रभु, जैन दर्शन, न्याय दर्शन, दया कृष्ण, नागार्जुन, पतंजलि और *योगसूत्र*, पाणिनि और *अष्टाध्यायी*, पुराण, पूर्व-मीमांसा दर्शन, बदरी नाथ शुक्ल, बादरायण, बौद्ध दर्शन, *भगवद्गीता*, भरत और *नाट्यशास्त्र*, मुकुंद लाठ, *भागवत पुराण*, *महाभारत*, यशदेव शल्य, योग दर्शन, रामानुजाचार्य,

रामअवतार शर्मा, लोकायत, वात्स्यायन और *कामसूत्र*, वेदांत दर्शन, वैशेषिक दर्शन, शंकराचार्य, संस्कृत काव्यशास्त्र, स्मृति-साहित्य, सांख्य दर्शन-1 और 2, सिद्ध-नाथ परम्परा।

संदर्भ

1. जगदीश चंद्र मिश्र (2008), *भारतीय दर्शन*, दो खण्ड, चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008
1. वियोगी हरि (सम्पा.) (2011), *हमारी परम्परा*, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
2. के. दामोदरन (2001), *भारतीय चिंतन परम्परा*, अनुवाद : जी. श्रीधरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.

— अनामिका